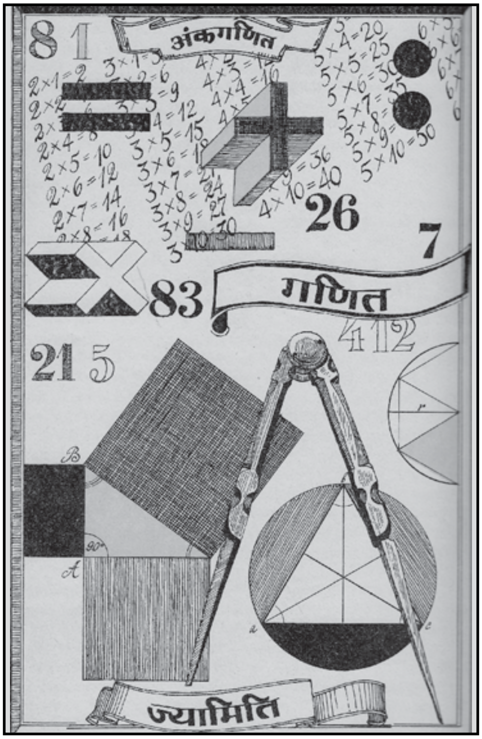
गणित सीखने में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व

पाठशाला की संवाद श्रृंखला की यह नौवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'गणित सीखने में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व'। इस संवाद में रवि के सुब्रह्मण्यम, प्रोफ़ेसर, होमी भाभा सेंटर फ़ॉर साइंस एजुकेशन टीआईएफ़आर, मुंबई; शहनाज़ डी.के. शिक्षक उदयपुर राजस्थान; अशोक प्रसाद, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, श्रीनगर, उत्तराखंड; हृदयकान्त दीवान, प्रोफ़ेसर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु; बीना जैन, शिक्षिका, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, नवीन ज्योतिनगर, जयपुर; सुधीर श्रीवास्तव, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, एससीईआरटी, रायपुर छत्तीसगढ़ और सुनील कुमार वर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, ज़िला सागर ने अपने विचार साझा किए हैं। सं.

रवि : आज गणित को देखने में काफ़ी परिवर्तन आया है, ख़ासकर शालेय गणित को देखने के नज़रिए में। पहले गणित को एक तकनीक, हिसाब-किताब, समस्या सुलझाने और सिद्ध करने के कौशल के रूप में देखा जाता था। आज गणित को ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में देखा जाता है जिसमें ज्ञान को जाँचने, खोजने व स्वीकारने का अपना एक तरीक़ा है। हम जानते हैं कि अलग-अलग विषयों में ज्ञान को सिद्ध करने के अलग-अलग तरीक़े होते हैं। ख़ासकर कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ होती हैं जिनसे ज्ञान स्थापित माना जाने लगता है। लगभग दो हज़ार साल से गणित ज्ञान की एक फ़र्क़ शाखा रहा है व उसका रूप धीरे-धीरे परिवर्तित होकर निर्धारित होता रहा है। लेकिन शालेय गणित में अब जो परिवर्तन आने लगा है उसका एक कारण न्यू मैथ्स मूवमेंट था। दूसरा कारण यह भी था कि गणित के विषय में हम अंकगणित और बुनियादी हिसाब-किताब से बहुत आगे बढ़ चुके हैं। एक तरह से ज्ञान की दूसरी शाखाओं के मुक़ाबले में गणित के ज्ञान में शायद काफ़ी अधिक वृद्धि हुई है जैसे कोई विस्फोट हुआ है, जैसे-जैसे गणित का विस्तार हुआ उसका इस्तेमाल (application) भी बहुत विस्तृत हो गया और ज्ञान की अन्य शाखाओं में गणितीय ज्ञान का इस्तेमाल भी बहुत अहम हो गया। यानी, पहले विज्ञान में गणित का इस्तेमाल होता था अब सूचना व तकनीकी और सामाजिक विज्ञानों में भी गणित के ज्ञान का इस्तेमाल होने लगा है।

चूँकि गणित के इस्तेमाल का ढंग बहुत व्यापक हो चुका है, अतः अब गणित को सिर्फ़ एक टूल के रूप में नहीं देख पाएँगे क्योंकि इससे बहुत समस्याएँ होंगी। इसे टूल के रूप में समझने से गणित का इस्तेमाल कहाँ और कैसे किया जा सकता है, इसकी समझ, उसकी सीमाएँ, सम्भावित उपयोग और शक्ति (पावर) क्या हो सकती है? ये पहलू बहुत संकीर्ण हो जाते हैं। इन सब बातों को ठीक ढंग से समझने के लिए गणित की एक मज़बूत बुनियाद होना ज़रूरी है और स्कूली गणित का एक उद्देश्य यही है। इस उद्देश्य के लिए गणित को ज्ञान की एक शाखा के रूप में समझना ज़रूरी है। जब तक गणित को एक कौशल, जैसे— घुड़सवारी, क्रिकेट आदि, की तरह देखा जाता था, यही होता था कि शिक्षक कुछ दिखाएँगे और बच्चे

उसकी नक़ल करने की कोशिश करेंगे। इसमें सिद्धान्त पढ़ाने और समझने की ज़रूरत नहीं थी। जैसे घुड़सवारी करते-करते सीख जाते थे वैसे ही करते-करते गणित भी सीख जाएँगे। लेकिन जब इसे ज्ञान की एक विस्तृत शाखा के दृष्टिकोण से देखते हैं, तब इसमें अवधारणाएँ समझना, गणितीय कथनों को समझना, यह जाँच पाना कि वे सही हैं या नहीं, गणित सीखने के केन्द्रीय बिन्दु हो जाते हैं और इसके लिए गणित में बातचीत करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। समझने के लिए महज़ दिखावे यानी प्रदर्शन से काम नहीं चल पाता। समझने और कथन की जाँच के लिए संवाद व भाषा अहम और ख़ास हो जाते हैं। इन्हीं के ज़रिए हम गणितीय नियमों को स्थापित कर सकते हैं, और जो स्थापित नियम हैं उनका इस्तेमाल कर अन्य नए नियम व सम्बन्ध खोज सकते हैं।



दूसरा पहलू है कि गणित की पेडागॉजी में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का पहला क़दम था– व्यवहारवाद से रचनावाद की ओर झुकाव। व्यवहारवाद गणित के उस दृष्टिकोण से जुड़ा था जिसमें उसे कौशल समझा जाता था और इसलिए उसकी पद्धति में फ़ीडबैक के रूप में ग़लतियाँ सुधारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। साथ ही उसमें गणित की अवधारणाएँ और प्रक्रियाएँ सिखाने का काम छोटे-छोटे टुकड़ों और चरणों में होता था। लेकिन धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि इस तरीक़े से बच्चे सीख नहीं पा रहे हैं, और शिक्षणशास्त्र के नज़रिए से देखें तब भी यह एक कमज़ोर तरीक़ा प्रतीत होता है क्योंकि जब बच्चे बिना समझ के सीखते हैं तो बहुत ग़लतियाँ होती हैं। इसीलिए रचनावाद की लहर के साथ ठोस वस्तुओं का इस्तेमाल कक्षा में शुरू हुआ, पेडागॉजी में यह पहला बदलाव आया। दूसरा महत्त्वपूर्ण बदलाव सामाजिक रचनावाद का उभरना था। इसके अनुसार, सिर्फ़ ठोस वस्तुओं के उपयोग से सीखना इतना अच्छा नहीं होता जितना जब उसमें ठोस वस्तुओं के साथ-साथ बातचीत व संवाद की भी अहम भूमिका हो। रचनावाद को पियाजे के साथ जोड़ा जाता है और सामाजिक रचनावाद को वायगोत्स्की से। सामाजिक रचनावाद में, सांस्कृतिक औज़ार (cultural tools) का इस्तेमाल बहुत ज़रूरी है। शिक्षा का उद्देश्य है दैनिक सोच-विचार की प्रक्रिया से वैज्ञानिक सोच-विचार की प्रक्रिया तक पहुँचा पाना। वैज्ञानिक सोच को प्रोत्साहित करने में कल्चरल टूल्स के साथ भाषा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके अलावा शिक्षणशास्त्र की दृष्टि से भी भाषा महत्त्वपूर्ण है। ये दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं जिनकी वजह से गणित की कक्षा में भाषा और संवाद की जगह होनी ही चाहिए।

अशोक : जब हम गणित को कौशल की तरह देखते हैं तो भाषा का उतना महत्त्व नहीं रहता है, लेकिन अगर हम उसको पड़ताल या कुछ खोज करने के तरीक़े के रूप में देखते हैं तब भाषा बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाती है। जैसे कि बच्चे को यह कहा जाए कि जो

सवाल उसने हल किए हैं उन्हें अपने शब्दों में बोलकर बताए और दैनिक जीवन के उदाहरणों को कक्षा में लाकर उनका इस्तेमाल करे। पर सवाल यह है कि आगे की प्रक्रिया किस तरीक़े की हो? शहनाज़ इस विषय पर अपने विचार रखें।

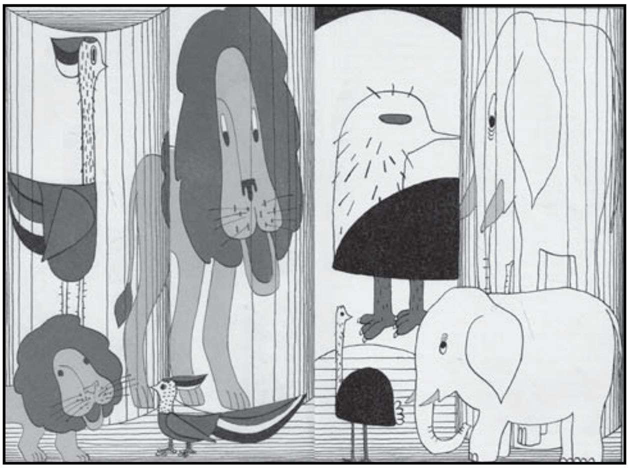
शहनाज़ : मैं कक्षा 6, 7 व 8 में गणित पढ़ाती हूँ। शुरुआती वर्षों में, मैं बोर्ड पर सवाल करवा देती थी जिन्हें बच्चे कॉपी कर लेते थे। इसके अलावा मुझे थोड़े बहुत और निर्देश देने होते थे। लेकिन पढ़ाने के साथ-साथ कार्यशालाओं में जाकर और विद्या भवन जैसी संस्थाओं में काम कर हमने समझा कि गणित इस तरह से नहीं पढ़ाया जा सकता और यदि पढ़ाया जाता है तो उससे बच्चों को कोई विशेष लाभ नहीं होता।

पहले गणित को एक तकनीक, हिसाब-किताब, समस्या सुलझाने और सिद्ध करने के कौशल के रूप में देखा जाता था। आज गणित को ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में देखा जाता है जिसमें ज्ञान को जाँचने, खोजने व स्वीकारने का अपना एक तरीक़ा है।

मैंने अपनी कक्षाओं में गणित सिखाने में काफ़ी बदलाव किया। बच्चों के साथ इबारती सवालों पर काम करने पर पाया कि उनकी माध्यम की भाषा (हमारे यहाँ हिन्दी) कमज़ोर जब वे गणित के सवालों को पढ़ते हैं तब बहुत मुश्किल से ही यह समझ पाते हैं कि सवाल में पूछा क्या गया है, क्योंकि सवालों की भाषा दैनिक जीवन की भाषा से बहुत फ़र्क़ होती है। इबारती सवालों में जब उनको सवाल की दो-चार लाइनें पढ़नी होती हैं, तो पहली लाइन से तीसरी में आते-आते वो लगभग भूल ही जाते हैं कि पहली लाइन में क्या कहा गया है। मैंने कुछ बच्चों के साथ अलग-अलग समूह बनाकर बातचीत की। यह समझने का प्रयास था कि उन्हें क्या समस्या होती है और समझ में क्यों नहीं आता है। उन्होंने बताया कि गणित के बहुत सारे शब्द उन्हें समझ ही नहीं आते, जैसे सवाल में लिखा गया है कि इसका मूल्य क्या है? 'मूल्य' का मतलब उन्हें समझ नहीं आ रहा था। इसके बाद मैंने बच्चों से बात की कि आप बाज़ार जाते हैं और वहाँ ख़रीदी का कुछ काम करके आते हैं तो क्या उस बारे में कुछ सवाल बना सकते हैं? उन्होंने 'हाँ' कहा और सवाल बनाकर दिखाए।

उनके बनाए सवालों के कुछ उदाहरण रखूँ तो एक कॉपी 10 रुपए की है। हमने ऐसी 8 कॉपियाँ ख़रीदीं तो इन कॉपियों की क़ीमत कितनी होगी? फिर किताब में दिया सवाल पढ़ते हैं : एक कॉपी का मूल्य 8 रुपए है तो इस तरह की 10 कॉपियों का मूल्य ज्ञात कीजिए? तो इन सवालों में क्या कोई फ़र्क़ है? धीरे-धीरे वे समझ पाते हैं कि मूल्य और क़ीमत एक ही बात हैं। इस तरह की बातचीत से उनको गणित की पुस्तक भाषा का फ़र्क़ समझ आता है। ऐसी बातचीत होती रहना मुझे ज़रूरी लगता है। एक और उदाहरण देखें— सवाल था, एक कमीज़ के लिए 1 मीटर 70 सेंटीमीटर कपड़ा चाहिए और ऐसी 7 कमीज़ सिलवानी हों तो कितना कपड़ा चाहिए होगा? जब बच्चों से पूछा कि क्या आपने दुकानदार को कपड़ा मापते हुए देखा है? उनका जवाब 'हाँ' था। क्या 1 मीटर 70 सेंटीमीटर नाप जानते हो? उन्होंने कहा कि हाँ, जानते हैं। मैंने पूछा कि चलो बताओ, 7 कमीज़ के लिए कितना कपड़ा चाहिए होगा। उन्होंने बताया कि दुकानदार पहले एक कमीज़ के लिए नापेगा, फिर उसी से दूसरी, तीसरी नापेगा और ऐसा करके 7 कमीज़ के कपड़े नाप लेगा। मैंने कहा कि अभी हमारे पास कमीज़ तो नापने के लिए है नहीं और इस सवाल को करने के लिए कैसे पता लगाएँगे कि सात कमीज़ के लिए कितना कपड़ा चाहिए?

बच्चे सोचना शुरू करते हैं कि हमारे पास नापने के लिए कपड़ा नहीं है लेकिन सवाल तो हमें करना है, तब वो कहते हैं कि मैडम, इस सवाल में से सेंटीमीटर हटा दीजिए और हमें केवल यह बता दीजिए कि एक कमीज़ के लिए एक मीटर कपड़ा तो सात कमीज़ के लिए सात मीटर। फिर आगे और सोचेंगे तो 70 सेंटीमीटर को भी सात बार जोड़ना है। तो बच्चे कोशिश करते हैं कि कैसे जोड़ेंगे। और कुछ बच्चे 70 को सात बार लिखकर जोड़ देते हैं। इस तरह से सेंटीमीटर को फिर वापस मीटर में बदलना भी उनको समझ में आता है। 70 को सात बार जोड़ा तो 490 सेंटीमीटर हुआ। इस तरह की बातचीत से बच्चों को नापना, इकाइयों को बदलना, फिर पूरे कपड़े का हिसाब बताना समझ आया। इस तरह के अनुभवों से मुझे लगा कि बातचीत से उनको यह समझने में मदद मिलती है कि सवाल में क्या पूछा गया है और उन्हें क्या करना पड़ेगा। और फिर इबारती सवाल ही नहीं हैं, और तरह के छोटे सवाल भी हैं, जैसे– दी हुई संख्याओं को आरोही या अवरोही क्रम में जमाइए, क्षेत्रफल, परिमाप बताइए, आदि।



यहाँ बच्चे समझ नहीं पाते कि आरोही और अवरोही का क्या मतलब है? यहाँ भी उनसे बात करनी पड़ती है कि आरोही का मतलब है 'छोटे से बड़ा', और जब संख्याओं को जमाते हुए बार-बार 'छोटे से बड़ा' को आरोही शब्द के साथ काम में लेते हैं तो वे धीरे-धीरे समझने लगते हैं। इसी तरह फिर अवरोही के साथ। इस प्रक्रिया में धैर्य चाहिए क्योंकि आत्मविश्वास की कमी के कारण वे बार-बार कहते हैं कि कैसे जमाना है, हमें समझ में नहीं आ रहा, आप बता दें। उनके साथ यह बात करते हैं कि इन संख्याओं को पढ़कर देखो कि कौन-सी बड़ी है कौन-सी छोटी। आरोही का मतलब क्या है? जब आप गिनती लिखते हो तो क्या होता है? जब गिनती आगे बढ़ती जाती है, तो उसमें संख्याएँ आरोही (बढ़ते) क्रम में चलती हैं। अब आगे बढ़ते जाने के लिए सबसे पहले कौन-सी संख्या लिखेंगे। इस तरह कक्षा में बातचीत करते-करते बच्चों से भी बहुत-सी बातें निकलकर आती हैं, जैसे वो कहते हैं कि हमारे पास बिल था पर हमें नहीं पता था कि बिल कैसा होता है। अब ध्यान देंगे। या बाज़ार में गए तो हमने कभी ध्यान से नहीं देखा कि सामान की सजावट कैसी होती है और दूध वाले कैसे मापते हैं।

बातचीत के ज़रिए धीरे-धीरे सवालों को लेकर थोड़ा अधिक सोचना-विचारना शुरू होता है। हालाँकि, शुरुआत में मुश्किलें आती हैं, लेकिन बार-बार करते रहने से यह सब उनकी प्रैक्टिस में आ जाता है। वे समझने लगते हैं कि दिए गए सवाल को अच्छे से पढ़ना है और समझ में नहीं आए तो दो बार पढ़ना है, और सोचना है कि क्या पूछा गया है और हम इसको कैसे हल करेंगे। उसके बारे में बातचीत करनी है और फिर प्रश्न करके बराबर उनकी ही बातों को उनके सवालों के साथ जोड़ते हुए आगे बढ़ाना पड़ता है। इस प्रक्रिया में थोड़ा तर्क भी शामिल हो और बच्चे ये समझें कि ऐसा क्यों करें या क्यों नहीं करें, या इसमें

क्या करना ज़रूरी है जिससे वो समझ पाएँ कि उनका सवालों को समझने का ढंग कैसा हो?

अशोक : धन्यवाद शहनाज़, आपने दो बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहीं। पहली, किताब में दिए गए सवालों की भाषा और बच्चे की भाषा में बड़ा अन्तर होता है। दूसरी, हमें कक्षाओं में बातचीत को बढ़ावा देना चाहिए क्योंकि ये सोचने-विचारने और तर्क करने में मददगार होती है। इसके लिए कक्षाओं की प्रक्रियाएँ भी सोचनी पड़ती हैं, जैसे– कुछ रुकना, रुक कर कहना, सोचो, अच्छा ये बताओ, आदि। अब सुनील अब आप अपने विचार रखें।

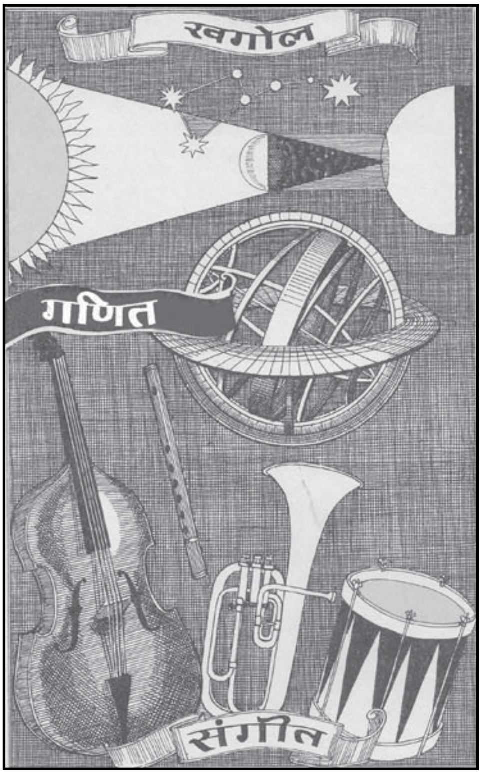
सुनील : धन्यवाद अशोक। यह बात दोहराने योग्य है कि बातचीत कई मायने में बच्चों और हम सबके लिए मददगार होती है। जैसे ज़िक्र आया है कि पाठ्यपुस्तक की भाषा और बच्चों की भाषा में काफ़ी दूरी हो सकती है, और बच्चों के साथ संवाद इस दूरी को पाटने का मौक़ा देता है। इससे यह समझने की गुंजाइश भी बनती है कि बच्चे का परिवेशी सन्दर्भ क्या है, बच्चे किन शब्दों इस्तेमाल कर रहे हैं और किनका अर्थ वे नहीं जानते। जो शब्द मैं इस्तेमाल कर रहा हूँ या जो किताब में हैं, उन्हें बच्चे जानते हैं कि नहीं। मैंने महसूस किया है कि जब बच्चों को सन्दर्भ देते हुए चीज़ों को खोजने की तरफ़ लगाया जाता तो ऐसे खोजकर सीखने में उन्हें मज़ा मिलता है। गणित को मात्र एक विषय के रूप में अथवा सिर्फ़ एक कौशल के रूप में देखना उचित नहीं हैं, आज यह समझ नीति चर्चा में और कई जगह पाठ्यपुस्तक में भी आ गई है, किन्तु फिर भी कक्षा तक इसके पहुँचने में अभी भी बाधाएँ हैं जिन्हें दूर करना होगा। पाठ्यपुस्तक में आने से लेकर कक्षा तक जाने में कई कड़ियाँ हैं और इन सब बातों को वास्तव में महसूस करना आसान नहीं होता। शिक्षकों से बच्चों के परिप्रेक्ष्य को समझकर चर्चा करने की बात करने पर उनका कहना यही होता है कि इस सबमें बहुत समय लगता है और हम पाठ्यक्रम कैसे पूरा करें, किन्तु इसके न करने से बहुत समस्या होती है, जैसे– एक सवाल था : घनाभ में एक फुट मोटा, एक फुट चौड़ा, और पाँच फुट लम्बा एक लट्ठा है। उससे एक फुट चौड़े, एक फुट लम्बे और एक इंच मोटे कितने पटिए निकलेंगे? यह बहुत सामान्य-सी बात है, पर इसे हल करने में बच्चे A × B × C यानी घनाभ के आयतन का फार्मूला लगाकर पहले बड़े और फिर छोटे घनाभ का आयतन पता करते हैं। इस क़वायद के बाद भाग करते हैं। दरअसल यह सब करने की ज़रूरत नहीं है केवल लम्बाइयों में भाग करना है, अर्थात 5 फुट को 1 इंच से भाग करना है। दिक़्क़त यह है कि बातचीत के बिना समझ नहीं बनती और सिर्फ़ यांत्रिक ढंग से फ़ॉर्मूलों का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, प्रशिक्षणों में भी शिक्षकों को तरीक़े सिखाए जाते हैं व स्रोत व्यक्ति उनसे उस तरह की चर्चा नहीं कर पाते जिससे उनमें समझ व आत्मविश्वास आए। प्रशिक्षण के दौरान उन्हें स्वायत्तता इस्तेमाल करने के लिए तैयार नहीं किया जाता और न ही उसकी अपेक्षा होती है। कक्षा में क्या पढ़ाया जाना है, किस गति से पढ़ाया जाना है, यह सब तय करने का काम भी शिक्षा विभाग का होता है और शिक्षक के पास अपने ढंग से चलने और बच्चों के हिसाब से आगे बढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं होती। विभाग के ज़मीनी स्तर के कार्य करने वाले लोग व शिक्षक तो वैसे ही बँधे होते हैं एवं परीक्षा इसमें और ज़्यादा जकड़न

> गणित की पेडागॉजी में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का पहला क़दम था— व्यवहारवाद से रचनावाद की ओर झुकाव। व्यवहारवाद गणित के उस दृष्टिकोण से जुड़ा था जिसमें उसे कौशल समझा जाता था और इसलिए उसकी पद्धति में फ़ीडबैक के रूप में ग़लतियाँ सुधारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। साथ ही उसमें गणित की अवधारणाएँ और प्रक्रियाएँ सिखाने का काम छोटे-छोटे टुकड़ों और चरणों में होता था।

डाल देती है। यह सब गणित की कक्षा में संवाद व सार्थकता की सम्भावना को बहुत प्रभावित करता है।

अशोक : धन्यवाद सुनील। बीना, आप अपनी बात कहें।

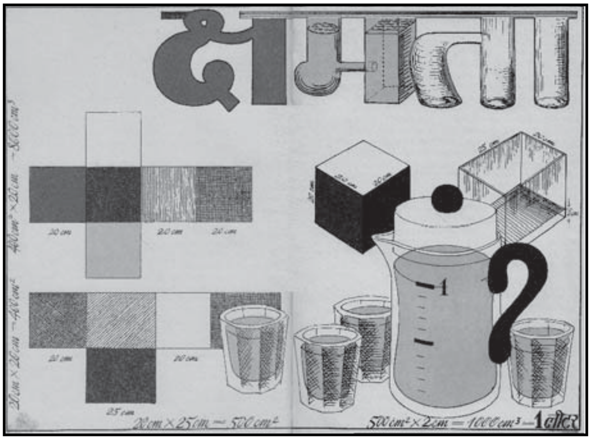
बीना : गणित सिखाने के लिए भाषा से सम्बन्ध जोड़ना ज़रूरी है। कक्षा में बच्चों के साथ संवाद और तर्क-वितर्क करते हुए चर्चा के माध्यम से ही हम बच्चों को गणित अध्ययन में आगे बढ़ा सकते हैं। मैं पहले 8वीं तक की कक्षाएँ लिया करती थी और ऐसा ही होता था कि मैं बच्चों को सवाल दे देती थी और बच्चे चुपचाप उस सवाल को हल करते थे। मैं और साथी शिक्षक यही कहते थे कि आपको यह सूत्र लगाकर इस तरह से इसको हल करना है। परन्तु यह एक मशीनी तरीक़ा था। जैसे एक मशीन का बटन चालू किया और मशीन अपना काम करना चालू करती है, वैसे ही हमने बच्चों को सवाल समझाया और उन्होंने उसी तरीक़े से हल करना शुरू कर दिया कहीं भी अपना दिमाग़ इस्तेमाल नहीं करना था। जब से मैं कक्षा 1 से 5 के बच्चों को पढ़ाने लगी तो मुझे लगा कि ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिख देने और बच्चे के द्वारा उसको कॉपी कर लेने से प्रभावी गणित शिक्षण नहीं हो सकता। यदि कक्षा में बच्चों की भागीदारी होनी है तो बच्चों के साथ संवाद करना ही होगा। कुछ अनुभव साझा करूँ, तो शुरू में मैं कहती थी कि यह गिनती उतार लो, या जोड़ का तरीक़ा समझा दिया। अब तुम जोड़ कर लो, बच्चे रटते थे और जहाँ भी थोड़ा बहुत फ़र्क़ आता, बच्चे वहीं अटक जाते। अब हम एक गट्ठर और बण्डल इस चीज़ को बच्चों में के साथ करते हैं कि दस के बाद दस का एक और बण्डल हो गया, उसके बाद अगर हम एक-एक तीली या जो भी वस्तु हम ले रहे हैं वो उसमें जोड़ते जाते हैं तो दस के साथ में एक को जोड़ा तो ग्यारह, फिर दो जोड़ा तो बारह, इस तरह से बच्चों को गिनती सिखाते हैं तो उसका वो ज्ञान भी स्थाई होता है। मैंने पढ़ाने के तरीक़े में बदलाव किया, बोलचाल की भाषा को कक्षा में जगह दी, बच्चों को बोलने की जगह दी कि इस सवाल को कैसे करें, हमने बच्चों के दैनिक जीवन के सन्दर्भों को शामिल करने का प्रयास शुरू किया। जैसे– कभी सप्ताह में तो कभी पन्द्रह दिन में एक बार कक्षा में बाज़ार बनाना। मैं अमूमन ऐसा करती हूँ कि रैपर्स इकट्ठे करके उन्हें दुकान पर रखती हूँ और बच्चों को पैसे दे देती हूँ। यह जो नक़ली नोट आते हैं वही होते हैं। उनके उपयोग से बच्चे आपस में सामान लेते-देते हैं, ख़रीदते हैं और फिर देखते हैं कि हमने कितने पैसे दिए और कितने पैसे वापस मिलने चाहिए। इस तरह की गतिविधियों से और उनमें हुए संवाद से बच्चे बहुत कुछ समझ पाते हैं। अगर इबारती सवालों की बात करें तो किताब में दिए सवालों की भाषा बँधी हुई होती है, उसमें बच्चों की आम भाषा नहीं होती। 100 रुपए लेकर फ़रीदा बाज़ार गई। उसने 20 की पुस्तकें और 30 रुपए



की नोटबुक ख़रीदीं, उसने कुल कितने रुपए की सामग्री ख़रीदी। अब सामग्री और नोटबुक शब्द समझना मुश्किल हो सकता है। फिर नाम से भी सन्दर्भ सोचने में आसानी होती है, जैसे– यदि मेरी कक्षा में रहनुमा नाम की बच्ची है तो सवाल में, रहनुमा सौ रुपए लेकर बाज़ार गई, रखने से आसानी से समझ आता है। यहाँ बच्चों के लिए बताना आसान होता है कि रहनुमा कितने रुपए लेकर गई? पुस्तक कितने की थी? नोटबुक कितने की थी? उन्हें सवाल व उसे वैसे क्यों किया, यह समझ आता है। मेरे अनुभव से यह भी कह सकती हूँ कि यदि हम कुछ ठोस वस्तुओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए काम करते हैं तो उससे भी बच्चे उस कार्य को जल्दी सीखते हैं और तर्क भी दे पाते हैं। यदि मेरे सामने दो बण्डल हैं और उनके साथ में दो खुली तीलियाँ हैं तो ये दो बण्डल के साथ में दो तीली होने पर बाईस हो जाएँगे। कई बार बच्चों के सन्दर्भ में जो ठोस उदाहरण हैं, उनके उपयोग से जल्दी आगे बढ़ सकते हैं। हमारे विद्यालय में जो बच्चे आते हैं उनकी माताएँ साड़ियों पर फूल बनाने का काम करती हैं तो मैं उन फूल के पैटर्न्स से पैटर्न की चर्चा पर ले आती हूँ। जैसे– अगर तुम एक फूल ऐसा बनाते हो तो दूसरा कैसा बनेगा? और फिर उसके बाद कैसा बनेगा? क्योंकि यह उनके दैनिक जीवन में जुड़ा हुआ होता है और उन्होंने अपने अभिभावकों को उस कार्य को करते देखा है तो वो बेहद आसानी से पैटर्न पकड़ लेते हैं। इसके बाद हमने अपने विद्यालय में कुछ और ठोस वस्तुएँ, जैसे– पेंसिल, रबर आदि, उनके सामने रख दीं और उनसे पैटर्न बनवाए वो आसानी से उस कार्य को कर पाए। एक और बात सुनील सर ने कही कि हम उन्हें ख़ुद सोचने को नहीं कहते, सूत्र बता देते हैं। लेकिन ये क्यों है, कैसे है, ऐसे तर्क हम अपनी क्लास में बच्चों के सामने प्रस्तुत करते हैं। जैसे– यदि हम ग्राफ़ में बने खानों के आधार पर आयत के क्षेत्रफल की बात करते हैं तो बच्चों को समझ आता है कि क्षेत्रफल क्या है और उसको निकालने का तरीक़ा क्या हो सकता है वे स्वयं अपने सूत्र का निर्माण कर लेते हैं। वे यह भी समझ पाते हैं कि इससे आयत का ही नहीं किसी भी आकृति का क्षेत्रफल पता कर सकते हैं। मेरा मानना है गणित शिक्षण सबसे ज़्यादा संवाद माँगता है। उनके दैनिक जीवन से जोड़ते हुए जब हम उनसे बात करते हैं तो बच्चे अपने पूर्व ज्ञान को जोड़ते हुए बताते हैं कि उस कार्य को कैसे कर सकते हैं। जैसे– जो बच्चे बाहर बाज़ार में काम कर रहे होते हैं, बाज़ार में चाय की दुकान पर या सब्ज़ी बेचने का या ऐसे ही कुछ काम कर रहे होते हैं वे बहुत ही जल्दी इन अवधारणाओं को पकड़ भी लेते हैं। यानी, अगर हम पूछें कि पाँच किलो सब्ज़ी कितने की आएगी जब एक किलो सब्ज़ी का मूल्य बीस रुपए है, तो बच्चे बताने में ज़्यादा समय नहीं लगाएँगे क्योंकि ये उनके दैनिक जीवन से जुड़ी हुई बात है और वो रोज़ इस कार्य को करते ही हैं। कक्षा में हम बच्चों के सामने कुछ ठोस परिस्थिति रख उन्हें जब अमूर्त वस्तुओं की तरफ़ लाते हैं तो बच्चे जोड़ पाते हैं और कर पाते हैं। एक मैं सीधे लिख दूँ कि एक पेन का मूल्य दस रुपए है, ऐसे आठ पेनों का मूल्य कितना होगा? बच्चे उस सवाल को तीन बार पढ़ेंगे तो भी नहीं समझ पाएँगे कि उसमें क्या करना है। एक पेन बच्चे को दे दें कि यह तुम दस रुपए का लाए हो, अब ये मैंने सात और पेन रख दिए। अब ये आठों पेन कितने

> **ठोस वस्तुओं का इस्तेमाल कक्षा में शुरू हुआ, पेडागॉजी में यह पहला बदलाव आया। दूसरा महत्त्वपूर्ण बदलाव सामाजिक रचनावाद का उभरना था। इसके अनुसार, सिर्फ़ ठोस वस्तुओं के उपयोग से सीखना इतना अच्छा नहीं होता जितना जब उसमें ठोस वस्तुओं के साथ-साथ बातचीत व संवाद की भी अहम भूमिका हो। रचनावाद को पियाजे के साथ जोड़ा जाता है और सामाजिक रचनावाद को वायगोत्स्की से। सामाजिक रचनावाद में, सांस्कृतिक औज़ार (cultural tools) का इस्तेमाल बहुत ज़रूरी है।**

रुपए के होंगे? वो इस बात को बता पाएँगे क्योंकि उनके सामने पेन हैं जिनसे वह करके देख सकते हैं। मेरा तात्पर्य है कि इबारती सवाल जब भी हम बच्चों के साथ करें तो भले ही हम इबारत बोर्ड पर लिखते हैं लेकिन उस इबारत को हम बच्चे के दैनिक जीवन से जोड़ दें। जब आप उस इबारत को दैनिक जीवन से जोड़ते हुए कराते हैं तो धीरे-धीरे वो अपनी किताब की भाषा और अपने दैनिक जीवन के कार्यों को आपस में जोड़ने का प्रयास करेंगे और धीरे-धीरे हमें ये कहने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि बच्चे इबारती सवाल नहीं समझते पाते हैं। मेरी राय में हमें बच्चों के साथ उनकी भाषा में संवाद करते हुए, तर्क-वितर्क करते हुए, और सारे बच्चों को अपनी कक्षा में जोड़ते हुए चलना है।



अशोक : अब मैं सुधीर से आग्रह करूँगा कि वे अपनी बातें कहें।

सुधीर : गणित की कक्षा में भाषा का इस्तेमाल और उसको लेकर बच्चे को शामिल करना और फिर सीखने में उसकी मदद करना, इन तमाम मुद्दों पर मैं सोच रहा था। तब एक विचार यह आया कि वो कौन-कौन सी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें बच्चा बात करने से कतराता है और उन परिस्थितियों का निराकरण कैसे कर सकते हैं और कैसे वो माहौल बना सकते हैं कि बच्चे को कक्षा में बात करने के ज़्यादा मौक़े मिलें। मैंने अपने बचपन को याद किया। जब हम पढ़ते थे, चाहे स्कूल में या कॉलेज की कक्षा में, तब हमारी क्या स्थिति थी, वो कौन-कौन सी चीज़ें थीं जो हमारे अन्दर बात करने का साहस पैदा नहीं होने देती थीं, चार-पाँच बातें मुझे समझ में आईं वो बातें हालाँकि कॉमन हैं और आप सब भी इन्हें जानते होंगे और इनसे सहमत होंगे लेकिन फिर भी बताना चाहूँगा। सबसे पहले यह कि शिक्षक कैसे हैं, हमारे साथ उनका व्यवहार कैसा है? यदि वो घुलने-मिलने वाले, ख़ुशमिज़ाज शिक्षक हैं जिनके साथ कक्षा में हमें ऐसा लगता है कि हम बात कह सकते हैं तो हम बोलते हैं, अपनी बात कहते हैं। यदि बहुत डर पैदा करने वाला शिक्षक होता था तो हम अकसर चुप रहते थे। इस प्रकार, पहला कारण जो बच्चे को बात करने से रोकता है, या वो उसको मोटिवेट कर सकता है वो है शिक्षक का व्यवहार। दूसरी चीज़ थी कि आम बच्चों की तरह हमारे अन्दर भी हमेशा एक डर रहता था कि हम जो बात कहेंगे वो ग़लत होगी या सही। उस समय ऐसी कोई सोच न तो विद्यार्थियों के दिमाग़ में थी और न ही शिक्षक के दिमाग़ में, कि बच्चे को ग़लती करने के मौक़े दिए जा सकते हैं और सीखते समय ग़लती होती ही है। अगर बात सही होगी तो ठीक है, लेकिन सही नहीं हुई तो कई बार कक्षा में बाक़ी सारे साथियों के उपहास का पात्र बनना पड़ता था और ये तीसरा कारण था कि हमारे साथी कहीं हमारा मज़ाक न उड़ाएँ। चौथी बात थी कि हमारी गणित की कक्षाओं में बात करने के मौक़े बेहद कम हुआ करते थे, बातचीत अकसर एकतरफ़ा चलती थी, शिक्षक बोर्ड पर सवाल हल करके चले जाते थे और हम कुछ समझते, कुछ नहीं समझते कॉपी में नोट करने की जद्दोजहद में होते थे। चलो, आप कुछ बताओ, बात करो, यह कहा ही नहीं जाता था। अधिक-से-अधिक यही होता था कि जब सारी सूचनाएँ इकट्ठी हो जाती थीं तो सर पूछते थे कि बताओ, इसके लिए कौन-से सूत्र का इस्तेमाल करोगे? तो बातचीत केवल सूत्र की होती थी। जो हमने पढ़ लिए उसके बाद

उसमें से चुनने की। इतनी सारी सूचनाएँ हैं तो कौन-सा सूत्र यहाँ हमको उचित होगा, इस तरह बातचीत सीमित रहती थी।

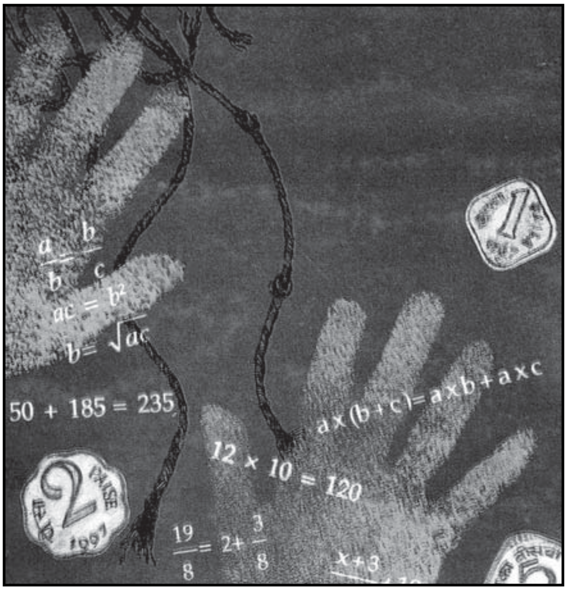
अगली बात जो इस सन्दर्भ में मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है वो ये है कि जो विषय सामग्री थी या पाठ्यवस्तु या जिस चीज़ पर भी कक्षा में बात हो रही है, क्या वह बच्चों की समझ और जानकारी के दायरे में है? अभी के सन्दर्भ में जब मैंने शिक्षक के रूप में काम करना शुरू किया तब भी मैंने देखा कि बच्चों के साथ बातचीत में एक बहुत बड़ा कारक यह होता है कि जिन चीज़ों को लेकर कक्षा में बच्चे के साथ में बातचीत कर रहे हैं वो या उनका सन्दर्भ क्या बच्चे की पहुँच में है? ये भी एक ख़ास मुद्दा है जो तय करता है कि बच्चा अपनी कोई बात कर पाया कि नहीं। आगे एक कक्षा का उदाहरण रखूँगा जिसमें स्पष्ट होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ कैसे बन सकती हैं और बच्चे कब व कैसे बात कर सकते हैं? एक महत्त्वपूर्ण पहलू इसमें भाषा का है। अगर हमारी कक्षा की भाषा हिन्दी है और बच्चे हिन्दी ठीक से नहीं बोल पाते या समझ नहीं पाते हैं तो वे चुप रहते हैं। वे जब शिक्षकों को हिन्दी में ही बात करते देखते हैं तो उन्हें लगता है कि हम हिन्दी में अपनी बात नहीं कह पाएँगे, और उनकी अपनी भाषा, जैसे यहाँ छत्तीसगढ़ी, में नहीं बोल सकते। तो छत्तीसगढ़ी के न होने से उन्हें मौक़े नहीं मिलते, वो संकोच करते हैं और बहुत सारी चीज़ें समझते हुए भी अपनी बात नहीं कह पाते। भाषा का माध्यम भी कक्षा की बातचीत में, संवाद में एक बहुत बड़ा मुद्दा है।

गणित के सन्दर्भ में इससे जुड़ी हुई दूसरी चीज़ यह है कि गणित की जो विशेष शब्दावली है उसके अर्थ को वो ठीक से नहीं समझता तो उसका प्रयोग करने से भी हिचकिचाता है और इन सबके साथ जुड़कर एक बात और आती है कि शिक्षक ने बच्चे के अन्दर कितना आत्मविश्वास पैदा किया है। जिस पृष्ठभूमि से बच्चा आ रहा है, वहाँ उसके आत्मविश्वास के साथ किस तरह का काम हुआ है? ये कुछ बिन्दु मुझे समझ में आए कि ये वो कारक थे जो हमको भी बातचीत करने से रोकते थे। इस आधार पर बच्चों के साथ काम करने के दरमियान मैं अकसर सोचता था कि कक्षा प्रक्रियाओं से ये बातें अगर किसी तरह से हटा पाएँ, तो बच्चे में बातचीत करने का शायद ज़्यादा हौसला बनेगा। अभी कुछ दिन पहले एक संकुल बैठक में चर्चा हो रही थी और यही बात चल रही थी कि गणित को लेकर क्या शिक्षक को ही सारी बातें बतानी चाहिए या बच्चे को भी मौक़े देने चाहिए। बात निकलकर आई कि हम बच्चे को यदि मौक़ा दें तो बहुत सारी चीज़ें उनके पास से निकलकर आ सकती हैं। बहुत सारे शिक्षकों को इसपर यक़ीन नहीं होता कि ये चीज़ें हो सकती हैं। उनकी इस बातचीत के आधार पर हम लोगों ने तय किया कि बच्चों के साथ एक छोटी-सी एक्सरसाइज़ करके देखें। और मुझे मौक़ा मिला तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ काम करने का।

गणित में भाषा के उपयोग में गणितीय भाषा का भी उपयोग और उसमें गणितीय संवाद करना बहुत ज़रूरी होता है। इसकी भी केन्द्रीय भूमिका होती है। जैसे— दावा करना या अनुमान लगाना (conjecture), उसे परखना व उसके साथ सहमति या असहमति व्यक्त करना। और इस सहमति या असहमति के हमारे तर्क क्या हैं, उनको भी प्रस्तुत करना ज़रूरी है। कक्षा की बातचीत में इसके लिए भी जगह बननी चाहिए।

शुरू में मुझे समझ नहीं आया कि किससे शुरुआत करें। लेकिन मैंने देखा कि वो बच्चे उस समय कपड़े की एक गेंद बनाकर खेल, खेल रहे थे। मुझे लगा कि यहीं से बातचीत शुरू की जा सकती है। मैं उनकी कक्षा में गया, शिक्षक भी साथ थे। मैंने उनकी गेंद को लेकर उनसे बात की। उनसे पूछा, कैसे बनाई? जिस बच्चे ने बनाई थी उसे बताने में, उसका वर्णन करने में

काफ़ी ख़ुशी हुई। उसने बताया कि पहले बहुत सारे कपड़े एकत्र किए और उनको सुतली से बाँधना शुरू किया, फिर बाँधते-बाँधते इसे एक आकार दे दिया और ऊपर कपड़े लपेट दिए। फिर उन सारी चीज़ों को एक मोज़े के अन्दर बन्द कर दिया। तो गेंद के बनने की प्रक्रिया क्या थी वो उसने बताई। अब मैंने कहा कि गेंद का आकार ऐसा क्यों है? आप उसको चॉक के डिब्बे में भर सकते थे, तो और बहुत अच्छी, बड़ी गेंद बन सकती थी। उन्होंने कहा कि ये जो गेंद है ये इससे लुढ़कती है। यहाँ बताना चाहूँगा कि ये सारी बातचीत दो भाषाओं में हो रही थी। मैं हिन्दी में बोल रहा था और बच्चे छत्तीसगढ़ी में जवाब दे रहे थे। और कुछ ही देर में उनको ये समझ में आने लगा था कि मैं उनकी बात समझ पा रहा हूँ और वो मेरी। उन्होंने कहा कि बॉल ढोलान के मतलब है कि बॉल लुढ़क जाती है। उनके पास हिन्दी भाषा के गणित सम्बन्धित शब्दों के छत्तीसगढ़ी पर्यायवाची होते हैं। अगर कक्षा में उनकी भाषा के शब्दों को जगह देना शुरू करें तो उनके लिए चीज़ें आसान हो जाती हैं। बातचीत चली, मैंने आगे पूछा कि ऐसी और कौन-कौन सी चीज़ें होती हैं? उन्होंने बहुत सारी चीज़ों के नाम गिनाए। जैसा इस गेंद का शेप है वैसी बाटी भी होती है, भँवरा भी लगभग वैसा ही होता है, और लड्डू भी ऐसा होता है। ऐसी कई सारी चीज़ें सामने आईं। मैंने पूछा कि इस आकृति का कोई नाम भी होता है? बच्चों ने बताया कि ऐसी आकृति को हम गोल कहते हैं। फिर मेरा सवाल था कि और जो तुम जानते हो उनमें से कौन-कौन सी चीज़ें गोल होती हैं? उन्होंने बताना शुरू किया : साइकल के टायर भी गोल होते हैं, चक्का भी गोल और इस तरह उन्होंने आसपास की बहुत सारी चीज़ों के नाम गिनाए। वे गोल के साथ वृत्त और चक्र की बात भी कर रहे थे। मुझे लगा कि इस बात को आगे बढ़ाकर देखना चाहिए। मैंने फिर पूछा कि ये टायर का गोल होना और बॉल गोल होना, क्या इन दोनों में कुछ फ़र्क़ है, कोई अन्तर है? अब देखिए, यहाँ उन बच्चों ने आपस में बातचीत शुरू की और ढूँढ़ना शुरू किया कि टायर और बॉल दोनों को हम गोल कह रहे हैं, लेकिन इन दोनों के गोल होने में एक फ़र्क़ तो है जो हमें साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है। पर इस फ़र्क़ को बताएँ कैसे? थोड़ी देर बाद एक बच्ची ने कहा कि सर, ये जो चक्का है न इसे जब हम ज़मीन पर रखेंगे तो वो सभी तरफ़ से ज़मीन को छूता है। लेकिन जब हम गेंद को ज़मीन पर रखते हैं तो गेंद का थोड़ा-सा हिस्सा ही ज़मीन को छूता है। इसी तरह से उन्होंने बहुत सारी चीज़ें अपने शब्दों में बताईं और वो निश्चित रूप से एक वृत्त को और एक गोले को अलग-अलग कर पा रहे थे। ऊपर जिन बिन्दुओं की मैंने बात की जिनके कारण बच्चे बोलते नहीं, मैंने कोशिश की कि उन्हें हटाऊँ और हटा पाया। यह देखा कि बातचीत व संवाद से चीज़ें बन सकती हैं। उसके बाद कुछ और बातें हुईं। मैंने उनसे पूछा कि अगर टायर जैसे तुमको गोल बनाना है तो ऐसा बनाने के और क्या-क्या तरीक़े हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि टायर को ज़मीन पर रख दें

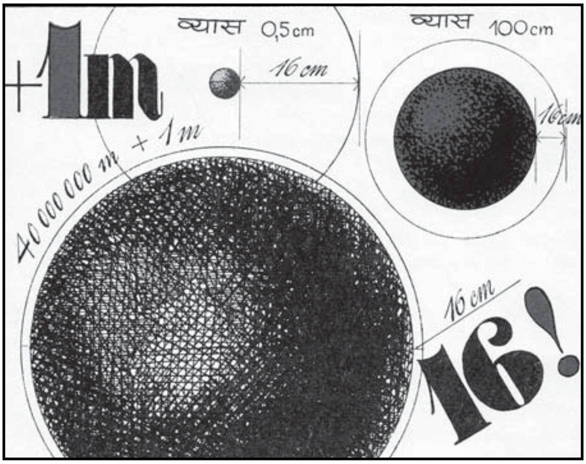


और वहाँ से जब हम उसके साथ-साथ लकड़ी चलाएँगे तो उस तरह की आकृति बन सकती है। एक थाली को ज़मीन पर रखते हैं, ढक्कन को काग़ज़ पर रखकर पेंसिल घुमाएँ तो भी यह आकृति बन सकती है। अमूमन उन्होंने वृत्त बनाने की बात कर ली। मुझे लगा कि इनके जो गणितीय नाम हैं, जैसे– वृत्त, ये शब्द उनके पास कैसे जाएगा। मैंने बच्चों से कहा कि ये जो आकृति तुम देख रहे हो इसके बारे में किताब में कुछ बातें दी गई हैं, अगर किसी ने देखा हो तो तुम लोग बता सकते हो। इतना कहने की देर थी कि सारे बच्चों ने दौड़कर अपने बस्ते से किताबें निकालीं और वृत्त वाले पाठ को ढूँढ़ लिया। मैंने पूछा कि ये गेंद जैसे चीज़ थी उसको तो तुम गोल कह रहे थे, वैसे ये जो चक्का है इसको गोल कह रहे हो, क्या इसका कोई और भी नाम है? उन्होंने किताब को पढ़ना शुरू किया, बहुत आश्चर्य हुआ कि उस बीस-पच्चीस बच्चों की कक्षा में सभी बच्चे एक किताब के ऊपर मक्खी की तरह झूम गए थे उनको पढ़ने में दिक़्क़त हो रही थी फिर भी उन्होंने पढ़कर बता दिया कि सर, इसका नाम वृत्त है। 'वृत्त' शब्द किताब में से ढूँढ़ना उनकी अपनी खोज थी और एक नया नाम उन्होंने ढूँढ़ लिया और एक फ़र्क़ जान लिया कि जो एक गेंद जैसी चीज़ है उसका एक नाम है और चक्के जैसी चीज़ के लिए दूसरा शब्द है, मैं जिसे वृत्त कह रहा हूँ उसको वो 'विरित' बोलते हैं, लेकिन मुझे समझ में आ रहा था और यह भी कि अभी इसे बोलने की इजाज़त होनी चाहिए। देर-सवेर वे ख़ुद ही शब्दों का संशोधन कर लेंगे। फिर मैंने कहा कि इसके बारे में पाठ में और क्या-क्या चीज़ें दी गई हैं तो कुछ ही देर में उन्होंने पूरा पाठ पढ़ लिया, आपस में बातचीत की और बताया कि सर, इसमें त्रिज्या और केन्द्र भी लिखा है। फिर हमने त्रिज्या पर बात शुरू की। उन्होंने गणितीय शब्दों में त्रिज्या की परिभाषा नहीं बताई लेकिन उनकी समझ बिलकुल सही थी। ठीक बीच की जगह से किनारे तक जो लकड़ी रखेंगे उसकी जो लम्बाई होगी वो त्रिज्या की माप होगी और ये जो रेखा बनेगी वो त्रिज्या होगी। अगला सवाल था कि एक वृत्त में तुम कितनी त्रिज्याएँ बना सकते हो, वहाँ कक्षा में चारों ओर बोर्ड बने हुए थे तो बच्चों ने अपने-अपने हिस्से में, अपने अनुमान से वृत्त बनाया और अनुमान से एक केन्द्र बनाया और उनमें होड़ लग गई कि कौन कितनी ज़्यादा त्रिज्या बना सकता है। सबने अपनी-अपनी त्रिज्याएँ बनाईं। कोई बोला, मैंने 25 त्रिज्या बनाईं। कोई बोला कि सर, मैंने 26, कोई बोला 40। अन्त में पूछा कि और ज़्यादा बन सकती हैं तो बोले, हाँ सर, और बहुत सारी बन सकती हैं। ये मेरा छोटा-सा अनुभव था। बाद में जब शिक्षकों के साथ चर्चा हुई तो उनका कहना था कि जितनी बातें आपने कक्षा में बताईं वो बच्चों को दस मिनट में बताई जा सकती थीं लेकिन आपने पौन घण्टे का समय लिया। दूसरे शिक्षक ने कहा कि एक फ़र्क़ है, वह यह कि सारी चीज़ें बच्चों ने बताईं। मुझे लगता है कि जो बातें मैंने महसूस कीं अपने विद्यार्थी जीवन में कि मुझे कौन-कौन सी चीज़ें कक्षा में बात करने से रोकती थीं, उनको किसी तरह से कक्षा में से बाहर कर सकें, उनको कक्षा के माहौल से बाहर निकाल दें तो बच्चों को बात करने के ज़्यादा मौक़े मिलते हैं। ऐसा करने से उनके पास जो गणित का ज्ञान था, वो भी बहुत आसानी से बाहर निकलकर आता रहा। इससे हमें यह समझ आता है कि उनकी समझ कैसे विकसित हो रही है।

बच्चों की भाषा और स्कूली भाषा में फ़र्क़ हो सकता है, जैसा हिन्दी और छत्तीसगढ़ी एवं बच्चे की भाषा में होता है। यह सब भाषाओं में होता है, सिर्फ़ छत्तीसगढ़ी की बात नहीं है। अगर आप मराठी, तमिल या हिन्दी को भी लेंगे तो वहाँ भी घरेलू भाषा और अकादमिक भाषा में काफ़ी फ़र्क़ होता है। तो इन चुनौतियों को कैसे हल कर सकते हैं इसपर कुछ बात हुई, लेकिन मुझे लगा कि गणित की कुछ ख़ास प्रक्रियाएँ व ख़ास भाषा और ख़ास संवाद व विमर्श जिसमें कुछ तर्क करना, अनुमान लगाना, परिभाषा बनाना, ये सब ज़रूरी होता है। ये भी हमें थोड़ा-सा लाना चाहिए।

अशोक : मुझे तीन प्रमुख बातें सामने आती लग रही हैं। एक सन्दर्भ से खोजने तक में जो प्रक्रिया होती है वह एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया होती है। दूसरी बात यह कि बातचीत के ज़रिए गणित की अवधारणाओं पर काम होता है और बेहतर तरीक़े से होता है, लेकिन ये अपने-आप में समय लेने वाली प्रक्रिया है और जो तीसरी बात है बच्चों के दृष्टिकोण को शामिल करना। तो क्या ऐसा भी होता है कि बातचीत तो हो रही हो और ये लगे कि वो बातचीत है लेकिन उसमें बच्चों का दृष्टिकोण तो शामिल ही नहीं है। इन सभी पर और बातचीत हो सकती है। तो रवि से शुरू करते हैं कि इस सब पर हम कैसे आगे बढ़ें?

हृदयकान्त : रवि, आप रियलिस्टिक गणित के बारे में थोड़ा विस्तार से बताएँ जैसा कि शहनाज़, बीना की बात में इसकी झलक दिखती है। उनके कुछ उदाहरणों में उस दृष्टि के कई पहलू भी दिखते हैं। इसपर भी आप कुछ कहें तो अच्छा होगा।



रवि : कक्षा में भाषा की भूमिका, उसके प्रकार्य से सम्बन्धित बहुत सारे उदाहरण आए हैं और बहुत अच्छे से वो स्पष्ट हुआ है कि भाषा बड़ी भूमिका निभाती है। जैसे– बच्चों के अनुभव को संग्रह करना, पेश करना, खोज शुरू करना और उसपर बातचीत होना। यह सब दर्शाता है कि कक्षा में बच्चे की भाषा में बोलना, संवाद करना ज़रूरी है। एक और बात मैं इसमें जोड़ना चाहता हूँ कि गणित में भाषा के उपयोग में गणितीय भाषा का भी उपयोग और उसमें गणितीय संवाद करना बहुत ज़रूरी होता है। इसकी भी केन्द्रीय भूमिका होती है। जैसे– दावा करना या अनुमान लगाना (conjecture), उसे परखना व उसके साथ सहमति या असहमति व्यक्त करना। और इस सहमति या असहमति के हमारे तर्क क्या हैं, उनको भी प्रस्तुत करना ज़रूरी है। कक्षा की बातचीत में इसके लिए भी जगह बननी चाहिए। सुधीर ने जो बताया, बहुत ही स्पष्ट, विस्तृत और पावरफुल था। उनके उदाहरण में बहुत-सी चीज़ें आ गईं, जैसे– बच्चों ने ध्यानपूर्वक अवलोकन किया कि गोल और वृत्त में कुछ फ़र्क़ होता है, इससे वे अनुभव की भाषा से गणितीय भाषा की ओर बढ़े। आगे यह कुछ-कुछ औपचारिक (फ़ॉर्मल) और अमूर्त (एब्स्ट्रेक्ट) हो जाता है। त्रिज्या और व्यास की भी बात हुई। त्रिज्या और व्यास दिखते नहीं हैं, लेकिन इन विचारों पर इन ख़ास सन्दर्भों में संवाद होना ज़रूरी है। शिक्षकों के बीच भी संवाद ज़रूरी है कि हम त्रिज्या, व्यास जैसी अवधारणाओं पर कैसे बातचीत कर सकते हैं। पहले ये सब स्पष्ट होना चाहिए और वो सोच पाने से फ़ायदा क्या होता है। वृत्त की परिभाषा हम जानते हैं, किसी एक केन्द्र बिन्दु से समान दूरी पर स्थित बिन्दुओं का बिन्दुपथ वृत्त कहलाता है। इसे बच्चे को कण्ठस्थ करने की बजाय समझना है। फिर वृत्त और डिस्क में भी अन्तर होता है वो भी सीखने वालों के सामने रखना है। पर इन परिभाषाओं की ज़रूरत क्या है, और इन परिभाषाओं से क्या फ़ायदा होता है, इनकी तरफ़ कैसे जा सकते हैं? ऐसे सवालों पर भी शिक्षकों के बीच संवाद ज़रूरी है। इससे ही जिसे पेडागॉजिकल कन्टेन्ट नॉलेज (pedagogical content knowledge) कहा जाता है, बढ़ता है। उदाहरण के लिए, वृत्त कितना बड़ा है यह नाप करना है तो कैसे करेंगे, तब इसमें शायद व्यास की अवधारणा

आ जाएगी। और यह सोच पाना कि एक वृत्त के हर व्यास की साइज़ बराबर होती है और उससे हम ये भी देख सकते हैं कि वृत्त का हर व्यास केन्द्र से गुज़रता है। इस सबके दौरान एक सन्दर्भ गढ़कर हम त्रिज्या की तरफ़ भी जा सकते हैं। इससे हम गणितीय अवधारणाओं और गणितीय भाषा की तरफ़ थोड़ा आगे बढ़ सकते हैं। बाक़ी सारी चीज़ों का अच्छे से ज़िक्र हुआ है और अच्छे से बात रखी है। इसमें कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे– बच्चों की भाषा और स्कूली भाषा में फ़र्क़ हो सकता है, जैसा हिन्दी और छत्तीसगढ़ी एवं बच्चे की भाषा में होता है। यह सब भाषाओं में होता है, सिर्फ़ छत्तीसगढ़ी की बात नहीं है। अगर आप मराठी, तमिल या हिन्दी को भी लेंगे तो वहाँ भी घरेलू भाषा और अकादमिक भाषा में काफ़ी फ़र्क़ होता है। तो इन चुनौतियों को कैसे हल कर सकते हैं इसपर कुछ बात हुई, लेकिन मुझे लगा कि गणित की कुछ ख़ास प्रक्रियाएँ व ख़ास भाषा और ख़ास संवाद व विमर्श जिसमें कुछ तर्क करना, अनुमान लगाना, परिभाषा बनाना, ये सब ज़रूरी होता है। ये भी हमें थोड़ा-सा लाना चाहिए।

बीना : अभी सर ने कहा था कि ऐसे शिक्षण में हमारा समय ज़्यादा लगता है, तो मेरा मानना यह है कि बच्चों के साथ काम करने की शुरुआत में, बच्चों के दैनिक जीवन व दैनिक गतिविधि से जोड़ते हुए बढ़ने में भले ही समय लगे लेकिन ये ज्ञान स्थाई होता है। जब हम बच्चों की समझ को आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं तो पिछले ज्ञान को थोड़ा रेफ़र करते ही पिछला ज्ञान जो उसके दिमाग़ में होता है वे इस्तेमाल में ले सकते हैं। वहाँ हमारे समय की बचत होती है। जब सूत्रों और रटन्त विद्या के माध्यम से पढ़ाते हैं तो बच्चे बिलकुल भूल जाते हैं और जब हम आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं हमें पहले वाला दोबारा सिखाना पड़ता है। इसलिए मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि इसमें बहुत ज़्यादा समय लगता है। उसके अलावा सुधीर सर ने बताया कि हम बच्चों से ही प्रश्न पूछें और उन्हें सोचने और जवाब देने कहे, वे ही किताब में ढूँढ़ें, यह बहुत अच्छा उदाहरण है।

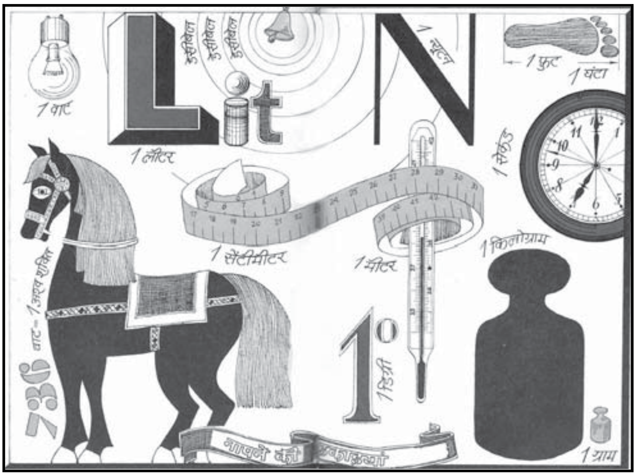
रजनी : शहनाज़ आप कुछ कहना चाहेंगी?

शहनाज़ : जब हम सवाल पढ़ते हैं और गणित की शब्दावली पर बात करते हैं तो बच्चों के साथ-साथ हमें यह बात भी करने की ज़रूरत होती है कि आपकी भाषा में इसे क्या कहते हैं। इससे उनकी समझ बनती है कि हम इसको यह कहते हैं और सामान्यतः यहाँ-यहाँ इस्तेमाल करते हैं। इससे उन्हें अपने सन्दर्भ से चीज़ों को जोड़ने में मदद मिलती है। और दूसरा जो मैंने अनुभव किया है कि जब शिक्षक बच्चों के साथ थोड़ा बहुत खेल खेलते हैं, जैसे– दुकान वाला खेल, पर्चे वाले, कार्ड वाले खेल आदि, उस समय भी बच्चों के साथ काफ़ी सारी बातचीत होती है। खेलों में भी वो कई सारी गणित की चीज़ों को खोज पाते हैं। जिस तरह के काम हम करवाना चाह रहे हैं उनसे सम्बन्धित कोई खेल, जिसमें गणित का पुट हो और गणितीय बातचीत की गुंजाइश हो, बना लेते हैं और उसपर लगातार बातचीत करने से चीज़े भी थोड़ी सरल हो जाती है। जैसा सुधीर सर कह रहे थे कि खेलते समय बच्चों को किसी प्रकार का डर नहीं होता और उनको यह भी नहीं लगता कि शिक्षक डाँटेंगे।

मुझे लगता है कि जिस तरह हमने ठोस चीज़ों को गणित में शामिल (introduce) किया है उससे गणित की शिक्षा में ये ख़तरा बढ़ गया है। शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वास्तव में ये सब जो बैसाखियाँ, कंक्रीट चीज़ें हैं, इनसे हमें आगे बढ़ना चाहिए। बच्चों के अपने सिम्बोलिक रिसोर्सेस होते हैं, उनके व उनके उपयोग पर और बातचीत करनी होगी। गणित में हम जिन सिम्बल्स का इस्तेमाल करते हैं, ज़रूरी है कि उनमें कुछ स्ट्रक्चर हो। जैसे— हर संख्या के लिए संख्यांक (numeral) का एक सिम्बल है।

उस समय उनमें थोड़ा आत्मविश्वास होता है कि हम खेल-खेल में कुछ सीख भी रहे हैं और इसमें ग़लती हो भी गई तो कोई ज़्यादा परेशानी नहीं होगी। अत: वहाँ सीखने और बातचीत की भी काफ़ी अच्छी सम्भावनाएँ होती हैं।

अशोक : सुनील ने एक बात रखी थी। वो कह रहे थे कि सन्दर्भ से शुरू कर खोज तक जाने की प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण होती है। यह बात यहीं तक रह गई थी तो इसपर थोड़े और उदाहरण मिले। और दूसरी बात, जैसे गणित में हम कुछ ठोस रूप से शुरुआत करते हैं, कुछ मॉडल बनाते हैं और उसके बाद बातचीत के मौक़े बनते हैं, ये मॉडल बनाने की प्रक्रिया कहाँ तक जा सकती है? शुरुआती स्तर पर ये ठीक लगता है, इसको आगे तक कैसे देख सकते हैं? इसपर भी थोड़ा कहें।



हृदयकान्त: मैं ऐसा ही सवाल रवि से भी पूछना चाह रहा था। ये जो मॉडल इस्तेमाल करने का मसला है, जैसे– चूड़ी का या गेंद को वृत्त या गोला जो भी कहें, या ये जो बण्डल और तीली का उपयोग हम करते हैं, एक तरह से सन्दर्भ का अर्थ और उसके इर्द-गिर्द पूरी बातचीत इन तरह के मसलों में उलझ गई है। क्या यह सही है या फिर उसको तोड़कर किसी और चीज़ पर जाना है। क्या हम, जिस तरफ़ रवि इंगित करना चाह रहे हैं, उस तरफ़ जा रहे हैं? यह उस सवाल में भी दिखता है कि सन्दर्भ से खोज तक कैसे जाएँ? मतलब कैसे यह पूरा प्रपंच कुछेक उदाहरण देने के रूप में न होकर ज़्यादा व्यापक मसले के रूप में हो, जिसके बारे में बच्चा और जगह भी सोचे। इसी बात को शायद *एनसीएफ़* में भी आप लोगों ने रखा है, गणितीयकरण के रूप में। तो आप अगर इस सबको लिंक कर सकें तो मुझे इस बात को समझने में थोड़ी मदद मिलेगी।

रवि : यह बात सही है कि हमने ठोस चीज़ों पर अगर बहुत ध्यान देना शुरू किया तो उससे कुछ दिक़्क़तें भी आ सकती हैं। जैसे, मुझे याद है कि तीलियों के बण्डल के साथ बच्चे मुंबई के आसपास एक स्कूल में काम कर रहे थे। मैं स्कूल में अनुभवी शिक्षाविद् के साथ गया था। उन्होंने बच्चों के सामने के तीली के बण्डल और तीली की जगह को बदल दिया, इससे बच्चे काफ़ी कन्फ़्यूज़ हो गए। वो उस प्रोसीजर में ही घुस गए थे और अटक गए थे। उनकी तीलियों के पीछे जो असल में संख्यात्मक मात्रा की समझ है वो नहीं बन पाई थी। उस तरह का सन्दर्भ का उपयोग भी एक यांत्रिक प्रोसीजर बन गया था। यह ख़तरा है कि अगर हम ठोस चीज़ों में अटक गए तो बच्चे ज़्यादा नहीं सीख पाएँगे। मुझे लगता है कि जिस तरह हमने ठोस चीज़ों को गणित में शामिल (introduce) किया है उससे गणित की शिक्षा में ये ख़तरा बढ़ गया है। मुझे लगता है कि शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वास्तव में ये सब जो बैसाखियाँ, कंक्रीट चीज़ें हैं, इनसे हमें आगे बढ़ना चाहिए। बच्चों के अपने सिम्बोलिक रिसोर्सेस होते हैं, उनके व उनके उपयोग पर और बातचीत करनी होगी। गणित में हम जिन सिम्बल्स का इस्तेमाल करते हैं, ज़रूरी है कि उनमें कुछ स्ट्रक्चर हो। जैसे– हर संख्या के लिए संख्यांक का एक प्रतीक है। संख्या व

उसके संख्यांक के रचने में कुछ स्ट्रक्चर होता है। स्थानीय मान और इस संरचना को समझना और उसके साथ परिमाण (quantity) की धारणा को जोड़ना बहुत ज़रूरी है। साथ ही, बच्चों को प्रतीकों के साथ काम करना आना चाहिए और इसपर भी प्रयास होना चाहिए कि बच्चे भी अपने सिम्बल बना सकते हैं, इन्वेन्ट कर सकते हैं। वे अपने प्रतीक बनाकर उपयोग कर पाएँ तो शायद ठोस चीज़ों को छोड़कर आगे बढ़ पाएँगे। फिर एक स्टेज आएगी जहाँ पर बच्चे अपने-आप ख़ुद के जो भी सिम्बल्स का इस्तेमाल कर रहे हैं वहाँ से भी औपचारिक शब्दों व मान्य गणितीय संकेतों की तरफ़ जा सकते हैं, लेकिन ये बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है। जब हम बीजगणित (algebra) की तरफ़ बढ़ेंगे तो इसके अभाव में वे बीजगणित कैसे सीख पाएँगे? क्योंकि कई आगे की अवधारणाएँ सीखने में बीजगणित की बहुत आवश्यकता है। साइंस सीखने में, सांख्यिकीय, प्रायिकता, निर्देशांक ज़्यामिति आदि, कई हिस्से हैं जिनमें बीजगणित की समझ ज़रूरी है। इनमें प्रतीक चिह्नों का प्रयोग होता है और उसे सिखाने का तरीक़ा अलग होता है। इनमें हम ठोस वस्तुएँ कम ही इस्तेमाल कर सकते हैं, तो इनके लिए क्या अप्रोच होनी चाहिए? ये अलग अप्रोच तो हमें लेनी ही होगी।

हृदयकान्त : बातचीत के सन्दर्भ में यह बड़ा सवाल हर शिक्षक का है कि मेरे पास बीस-पच्चीस या अधिक बच्चे हैं। मैं एक शिक्षक हूँ। जब मैं एक बच्चे के साथ बातचीत करता हूँ तो उस बच्चे को मैं उसके मॉडल्स बनाने, उन मॉडल्स से खेलने की और उन मॉडल्स को समझकर जो असल में गणितीय स्वरूप हैं वहाँ तक पहुँचाने में मदद कर सकता हूँ। लेकिन जब ज़्यादा बड़ी कक्षा है तो उसमें ये बातचीत किस प्रकार हो सकती है? और उसमें किस चीज़ से बचना चाहिए जिससे कि वो एक तरह से तीली या बण्डल जैसे छद्म, या जैसी बातचीत के बारे में चिन्ता थी, ये भी उसी तरह नाटकनुमा न बनकर रह जाए?

रवि : हाँ, यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमें एक उदाहरण चाहिए। जैसे– कक्षा के डिस्कोर्स (चर्चा व विमर्श) को हम बहुत ग़ौर से देखें तो उसमें गणितीय तत्त्व (मेथेमेटिकल चीज़ें) कहाँ हैं और कैसे उभरकर आ रहे हैं, ये समझना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि यही शिक्षकों के क्षमतावर्धन का तरीक़ा है। इससे उनके कौशल व समझ दोनों का विकास होगा। इसलिए हमें कक्षा में हो रहे विमर्श के अध्ययन की ज़रूरत है। यह भी सोचना होगा कि उसे देखने के लिए हम क्या-क्या और कौन-कौन से लेंस लगाकर उसको देखेंगे। एक और बात, कुछ ख़ास रिप्रेजेंटेशन जो होते हैं जो लम्बे समय तक गणित की शिक्षा में चल सकते हैं, मतलब प्राथमिक से लेकर उच्च प्राथमिक और हाई स्कूल एवं आगे भी, जैसे– नम्बर लाइन एक अच्छा उदाहरण है, उनको हमें शायद ज़्यादा महत्त्व देना चाहिए और उनको कहीं-न-कहीं केन्द्रीय भूमिका देनी चाहिए। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि प्राथमिक कक्षाओं से ही वो शुरू होना चाहिए, लेकिन हम जो भी रिप्रेजेंटेशन उपयोग कर रहे हैं उनमें से ऐसे कुछ रिप्रेजेंटेशन बहुत गहरे हैं। वे अलग-अलग रूप में हमारे साथ बहुत लम्बे समय तक जा सकते हैं। उनके साथ हमें जोड़ते रहना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि ये कुछ हद तक नियंत्रित

क्लासरूम के डिस्कोर्स (चर्चा व विमर्श) को हम बहुत ग़ौर से देखें तो उसमें गणितीय तत्त्व (मेथेमेटिकल चीज़ें) कहाँ हैं और कैसे उभरकर आ रहे हैं, ये समझना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि यही शिक्षकों के क्षमतावर्धन का तरीक़ा है। इससे उनके कौशल व समझ दोनों का विकास होगा। इसलिए हमें कक्षा में हो रहे विमर्श के अध्ययन की ज़रूरत है। यह भी सोचना होगा कि उसे देखने के लिए हमें क्या-क्या और कौन-कौन से लेंस लगाने होंगे।

करेगा कि बच्चे कुछ ठोस चीज़ों में ही न अटक जाएँ।

सुनील : यह ठीक है कि हमें वास्तव में ठोस वस्तु से अमूर्त की तरफ़ आना है। इसमें अनुभव व चर्चा से गणित को अमूर्त रूप में जो खींचकर निकालना है उस प्रक्रिया में शिक्षक की महती भूमिका है। इसमें जहाँ पेडागॉजिक व कन्टेन्ट के ज्ञान की ज़रूरत एक हद तक शिक्षक की क्षमता निर्माण की माँग करती है वहीं इसके अलावा इस तरह की कक्षा का निर्माण विश्वास, एजेंसी और स्वायत्तता की भी माँग करता है।

अशोक : आप सभी का इस संवाद में भाग लेने के लिए बहुत सुक्रिया।

*सभी चित्र व्लादीमिर ल्योवशिन की क़िताब *कप्तान एकक का फ्रिगेट*, रादुगा प्रकाशन मास्को से साभार